चतुर्थ अध्याय

भक्ति का स्वरूप एवं 'पदावली' और 'कीर्तन-घोषा' में चित्रित भक्ति भावना

भारतीय साहित्य में भक्ति विषयक काव्य की एक लंबी परम्परा है। इसी परम्परा में विद्यापति और शंकरदेव की रचनाएँ भी आती हैं। विद्यापति की अपनी कीर्ति का मूलाधार 'पदावली' में भक्ति विषयक अनेक पद मिलते हैं। इसी तरह शंकरदेव की श्रेष्ठ रचना 'कीर्तन-घोषा' में उनकी अनन्य भक्ति का परिचय मिलता है। प्रस्तुत अध्याय में भक्ति का स्वरूप एवं 'पदावली' और 'कीर्तन-घोषा' की भक्ति भावना पर प्रकाश डाला गया है।

4.1 भक्ति का स्वरूपः

मनुष्य के अस्तित्व के साथ ही भक्ति का अस्तित्व भी जुड़ा हुआ है। मनुष्य ने जिस क्षण प्रकृति की विशालता और उसके समक्ष अपनी लघुता का अनुभव किया, उसी क्षण उसके हृदय में उस अलक्षित, अदृश्य शक्ति के प्रति एक विशेष प्रकार का भाव उत्पन्न हुआ। इसे भारतीय चिंतन में आस्तिक भाव कहा जाता है। इसी आस्तिक भाव के प्रादुर्भाव के क्षण को मनुष्य हृदय में भक्ति के बीजारोपन का क्षण भी कहा जा सकता है। मनुष्य इसी के आधार पर अपने कल्याण की कामना करता है और विश्व का संचालन करनेवाली अपरिमित शक्ति के प्रति भक्ति करने लगता है। इसी तरह मनुष्य के जीवन प्रवाह के साथ-साथ भक्ति भी प्रवाहित होती रही है।

4.1.1 भक्ति की परिभाषाः

भक्ति का सम्बंध मनुष्य के हृदय से है। भक्ति मनुष्य की ऐसी मानसिक स्थिति है, जो अंतर्निहित होती है। सूत्रों के अनुसार 'भक्ति' शब्द का सर्वप्रथम उल्लेख श्वेताश्वेतर उपनिषद में मिलता है (नगेन्द्र 1973:88)।

भक्ति शब्द की व्युत्पत्ति 'भज' धातु से हुई है, जिसका अर्थ है 'सेवा करना' या 'भजना' । अर्थात् प्रेमपूर्वक इष्ट के प्रति समर्पण भाव ही भक्ति है।

भक्ति के लक्षणों के संदर्भ में अनेक मत उपलब्ध हैं। शास्त्रों तथा पुराणों में भक्ति के बारे में महत्त्वपूर्ण तथ्यों का उल्लेख मिलता हैं, जिन्हें भक्ति की परिभाषा के रूप में देखा जा सकता है। नारद भक्तिसूत्र में कहा गया है-

सा तस्मिन् परम प्रेमरूपा।। अमृत रूपा च।। (बायन 2014:11)

अर्थात् ईश्वर के प्रति निहित प्रेम ही भक्ति है।

शांडिल्यसूत्र में कहा गया है –

सा परानुरक्तिश्वरे। (बायन 2014:12)

अर्थात् ईश्वर के प्रति अनन्य अनुराग ही भक्ति है।

भक्ति के तात्विक विवेचन में श्रीमद्भागवत महापुराण का प्रमुख स्थान है। श्रीमद्भागवत महापुराण के एकादश स्कंध में कहा गया है –

भाभैबनै रपेक्ष्येण भक्तियोगेनविन्दति।

भक्तियोंगसलभते एंवयापूजयेतभाम्।। 53 (उपाध्याय 1901:1120)

अर्थात् निष्काम भक्ति द्वारा परामात्मा प्राप्त होते हैं, जो इस प्रकार उपासना करते हैं, उन्हीं को भक्तियोग प्राप्त होता है।

श्रीमद्भागवत गीता को श्रीमद्भागवतपुराण का सार कहा जाता है। भारतीय वैष्णव भक्ति परंपरा में गीता का अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। भक्ति ही भगवान प्राप्ति का परम तथा शुद्ध मार्ग है। इसका उल्लेख गीता में इस प्रकार है-

नवना भव मद्भक्तो
मद्याजी सां नमस्कुरू।
मामेवैष्णसि सत्यं ते
प्रतिजाने प्रियोहसिते। 18/65 (बायन 2014:15)

अर्थात् यहाँ श्रीकृष्ण अर्जुन को कहते हैं- 'तुम अपने मन को मुझ में ही एकाग्रचित्त रखो, मुझे ही भक्ति करो, मुझी को पुजो, मुझी को नमस्कार करो, मैं प्रतिज्ञा करके कहता हूँ कि मुझे प्राप्त करोगे। क्योंकि तुम मेरे प्रिय हो।'

इसी बात का उल्लेख महापुरुष माधवदेव ने अपनी कृति 'नामघोषा' में किया है-

मोते मात्र सदा दिया मन   मोर भक्त होवा सर्बक्षण
मोके पूजा मात्र मोके करा नमस्कार।
कहिलो तोमात तत्व बाणी   पाईवा सुखे मोक महामानी
तुमि प्रियतम सुहृद सखि आमार।।   (गोस्वामी 1989:111)

स्वामी विवेकानंद ने भी कहा था कि निष्कपट प्रेममार्ग से की गई परम सत्ता की खोज ही भक्ति है। (भट्टाचार्य 1997:65)

हिन्दी साहित्य के समर्थ आलोचक आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भक्ति की परिभाषा देते हुए कहा है –

श्रद्धा और प्रेम के योग का नाम भक्ति है। जब पुज्यभाव की वृद्धि के साथ श्रद्धा-भाजन के सामान्य लाभ की प्रवृत्ति हो, उसकी सत्ता के कई रूपों के साक्षात्कार की वासना हो तो हृदय में भक्ति का प्रादुर्भाव समझना चाहिए। (शुक्ल 2004:16)

भक्ति को रस रूप में प्रतिष्ठित करनेवाले, मधुसूदन सरस्वती और रूप गोस्वामी ने भक्ति को परमस्वरूपा माना है (मिश्र 2014:248)

इस प्रकार यहाँ उल्लेखित विविध परिभाषाओं के साथ हिन्दी और असमीया विद्वानों के मतों का अध्ययन विवेचन कर यह कहा जा सकता है कि- मनुष्य द्वारा निस्वार्थ और एकाग्रचित्त मन से परम सत्ता की खोज या उपासना का नाम ही भक्ति है।

4.1.2 भक्ति के भेदः

वेद, पुराण, शास्त्र, गीता आदि ग्रंथों में अनेक प्रकार की भक्ति का वर्णन मिलता है। भक्ति की अलग-अलग विशेषताएँ व लक्षण होते हैं। इन्हीं विशेषताओं के आधार पर भक्ति के स्तरों को समझने के लिए इसे प्रमुखतः दो भागों में विभाजित किया गया हैं। वे इस प्रकार हैं-प्रेमाभक्ति या साध्य भक्ति और गौणी भक्ति या साधना भक्ति। किसी भी सुख की कामना से परे केवल प्रेम में निमग्न होकर पूर्ण शांति प्राप्त करने की आवस्था को ही प्रेमाभक्ति या साध्य भक्ति कहा जाता है। नारद भक्तिसूत्र में इसे ही परम प्रेममय और अमृत स्वरूपा कहा गया है। गौणी भक्ति में वास्तव में भक्ति की प्रमुखता न होकर उपासक, उपास्य, पूजा सामग्री, पूजा विधि और मंत्र जप को महत्त्व दिया जाता हैं। इसी कारण इसे साधना भक्ति कहा जाता है।

उद्देश्य की दृष्टि से भक्ति को मुख्यतः दो भेदों में विभक्त किया गया हैं-सगुण और निर्गुण। सगुण भक्ति साकार होती है और निर्गुण भक्ति निराकार। निर्गुण भक्ति का अर्थ है निष्काम भक्ति। इसे अनन्य भक्ति भी कहा जाता है। नारदभक्तिसूत्र में कहा है-

अन्याश्रयानां त्यागोहनन्यता।।10।। (बायन 2014:17)

अर्थात् बिना किसी काम्यभाव से पूर्णतः निःस्वार्थ होकर सभी आश्रय का त्याग कर एकाग्रचित्त मन से एक ही भगवान को भजने का नाम ही अनन्य भक्ति है।

सगुण भक्ति को पुनः तीन भागों में विभाजित किया गया है-सात्विकी, राजसी और तामसी। सात्विकी भक्ति में मोक्ष की प्राप्ति के लिए किसी भी विधि-विधान की व्यवस्था नहीं होती। धन-ऐश्वर्य की प्राप्ति, विषय-वासना की कामना हेतु राजसी भक्ति की जाती है। इसमें भगवान की मूर्त्ति की स्थापना कर विधि-विधान से उपासना की जाती है। दम्भ और क्रोध से दूसरे की अहित के लिए की जाने वाली भक्ति तामसी भक्ति कहलाती है।

भक्ति के प्रकारों में नवधा भक्ति का विशेष स्थान है। श्रीमद्भागवतपुराण में नवधा भक्ति का उल्लेख इस प्रकार मिलता है-

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चन वंदनं दास्यं सख्यात्म्यनिवेदम।।
इति पुंसार्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्न वलक्षणा।
क्रियते भगवत्यद्धा तन्मन्येतधीतयुत्तयम।। (शर्मा 2019:05)

इस प्रकार नवधा भक्ति के अंतर्गत - श्रवण, कीर्तन, स्मरण, अर्चन, पादसेवन, दास्य, सखित्व, वंदन और आत्मनिवेदन आते हैं। इसमें श्रवण, कीर्तन और स्मरण को लीलामयी या प्रेमाभक्ति के रूप में, पादसेवन, अर्चन और वंदन को कर्ममयी भक्ति के रूप में तथा दास्य, सखित्व और आत्मनिवेदन को ज्ञानमयी भक्ति के रूप में माना जाता है।

भगवान के गुण-नाम, लीला-गान सुनने का कार्य ही श्रवण कहलाता है। भगवान का गुण-नाम, लीला-गान निज मुख से उच्चरित या गाने को कीर्तन कहते हैं। नवधा भक्ति में से इन्हीं श्रवण-कीर्तन को श्रेष्ठ

स्थान दिया गया है। भगवान का गुण-नाम, लीला, रूप आदि का चिंतन ही स्मरण कहलाता है। भगवान को याद करना, रूप का ध्यान करना, मानस जप आदि स्मरण के अंतर्गत आते हैं। अर्चन अर्थात् पूजा। श्रद्धा-भक्ति सहित भगवान के स्वरूप की पूजा करना ही अर्चन कहलाता है। अर्चन दो प्रकार के हैं-एक मानसिक और दूसरा बाह्यिक। मानसिक अर्चन में भक्त के आत्मसमर्पण की भावना प्रधान रहता है तथा बाह्यिक अर्चन में षोड़ोपचार के द्वारा भक्ति की जाती है। आसन्, पादार्घ, आचमन, पंचामृत, स्नान, वस्त्र, शृंगार, चंदन, पुष्प, धूप, द्वीप, नैवेद्य, सुपारी, यज्ञस्थल, परिक्रमा और वंदना ही षोड़ोपचार है। भगवान के किसी भी रूप की कल्पना तथा प्रतिमा आदि की परिचर्या करना ही पादसेवन कहलाता है। दास्य भक्ति का अर्थ है दास भावना। इसके अंतर्गत भक्त स्वयं को भगवान का दास या सेवक मानकर अपना सर्वस्व अर्पण करता है। यही दास्य भक्ति कहलाता है। भगवान को भक्त जब अपना मित्र, सखा तथा सुख-दुख का समभागी मानकर भक्ति करता है, वह सख्य भक्ति कहलाती है। भक्त जब भगवान के चरणों में नतमस्तक होकर उनकी स्तुति-प्रार्थना, श्रोतादि से भक्ति प्रदर्शन करता है, वह वंदन कहलाता है। भक्त जब अपनी मान-अभिमान, विद्या-बुद्धि त्याग कर निस्संकोच अपनी भूल, अपराध, दुर्बलता आदि प्रकाशित कर देह-मन-प्राण से भगवान के चरणों में शरणागत होता है, वही आत्मनिवेदन कहलाता है। यही भक्ति की चरमावस्था होती है।

भाव के आधार पर भक्ति के तीन भेद किए जाते हैं- शांत, वात्सल्य और माधुर्य। भगवान को ही सर्वस्व मानकर भक्त जब एकनिष्ठ भाव एवं पूर्ण निष्ठा से नित्य प्रतिदिन भगवान के चरणों में आत्मसमर्पण करते हुए अंतर्मन में शांति और आनंद उपभोग करता है, वही शांत भक्ति कहलाता है। माता-पिता के मन में उदित संतान के प्रति स्नेह या प्रेम भाव ही वात्सल्य भक्ति है। भक्त जब अपने भगवान को पुत्र सम मानकर प्रेम भाव से भक्ति करें, वहीं वात्सल्य भक्ति कहलाती है। भक्त जब भगवान को पति या पत्नी अथवा प्रेमी या प्रेमिका मानकर भक्ति करें, तो वही माधुर्य भक्ति कहलाती है।

इस प्रकार भक्ति के अलग-अलग भेद या प्रकार मिलते हैं। किंतु वास्तव में भक्ति वही है जिसमें भक्त अपना सर्वस्व भगवान के चरणों में अर्पण कर एकनिष्ठ भाव से ईश्वर की सेवा करें। भक्ति के क्षेत्र में भक्त केवल भक्त होता है। उसमें छोटा-बड़ा, ऊँच-नीच आदि का स्थान नहीं होता।

4.2. पदावली और कीर्तन-घोषा में चित्रित भक्तिः

4.2.1. पदावली में चित्रित भक्तिः

मैथिल कोकिल कवि विद्यापति की साहित्यिक प्रतिष्ठा का आधार है- 'पदावली' । किंतु साहित्य मनीषियों के समक्ष विद्यापति को लेकर अनेक विवाद मिलते हैं। विद्यापति के काव्य संसार को देखकर किसी ने इन्हें भक्त कहा, तो किसी ने शृंगारी। हिन्दी साहित्य में पदावली को लेकर गहरा विवाद रहा है कि यह भक्तिपरक रचना है अथवा शृंगारपरक। भक्ति के संदंर्भ में भी रचनाओं की विविधता के कारण विद्यापति को अनेक विद्वान शैव या शाक्त मानते हैं। किंतु विद्यापति को वैष्णव कहनेवाले आज भी अपने आग्रह पर दृढ़ हैं।

डॉ. जयनाथ नलिन का मत इस संदर्भ में द्रष्टव्य है –

भाषा और भावों की सूक्ष्मता, प्रांजलता, गहनता और सघनता के विकास क्रम की कसौटी माने तो क्रमशः शैव, शाक्त और वैष्णव धर्म की ओर उनका अग्रसर होना निश्चित होता है। (दीक्षित:56)

विद्यापति को भक्त सिद्ध करनेवाली कई दंतकथाएँ तथा जनश्रुतियों का भी प्रचलन हैं। जिन विद्वानों ने विद्यापति को भक्त के रूप में और पदावली को भक्तिपरक रचना माना है, उनमें सर्वप्रथम नाम डॉ. ग्रियर्सन का आता है। डॉ. ग्रियर्सन ने अपनी पुस्तक 'मैथिली क्रिस्टोपैथी' में राधा और कृष्ण को आत्मा और परामात्मा का प्रतीक बताते हुए पदावली को भक्तिपरक रचना सिद्ध किया है।

डॉ. ग्रियर्सन का कथन है –

राधा और कृष्ण वस्तुतः प्रतीक हैं। जीवात्मा परामात्मा से मिलने के लिए निरंतर प्रयत्नशील है। यह प्रयत्न तब तक अप्रतिहत रूप से चलता रहता है जब तक जीवात्मा परामात्मा में लीन होकर सायुज्य लाभ नहीं कर लेता।

जीवात्मा अपने सांसारिक प्रपंचों और माया के पक्षों में से इस प्रकार आबद्ध है कि अपनी आंतरिक प्रेरणा से परामात्मा को प्राप्त करने के लिए प्रयत्न नहीं करता। इसलिए उसे ईश्वरोन्मुख करने लिए गुरु की आवश्यकता होती है। विद्यापति के काव्य में दूती इसी गुरु का प्रतीक है। यह दूती जीवात्मा या प्रेमिका को निरंतर परामात्मा से मिलने के लिए प्रेरित करती है। इतना ही नहीं इस अभिसार या प्रेम मिलन के प्रत्येक कार्य में वह इसकी सहायता भी करती है। (सिंह 2017:68)

डॉ. ग्रियर्सन के पश्चात विद्यापति को भक्त तथा उनकी पदावली को भक्तिपरक रचना माननेवाले समर्थकों में नगेंद्रनाथ गुप्त, डॉ. जनार्दन मिश्र, श्री कुमारस्वामी, बाबू ब्रजनंदन सहाय, डॉ. श्यामसुंदर दास और डॉ. जयनाथ नलिन के नाम आते हैं। डॉ. ग्रियर्सन से प्रभावित डॉ. नगेंद्रनाथ गुप्त ने विद्यापति के काव्य में रहस्यात्मकता को स्वीकार करते हुए सन् 1835 में सिनेट हॉल पटना में अनुष्ठित एक व्याख्यान के दौरान अपने भाषण में कहा है–

विद्यापति की राधा-कृष्ण पदावली का सारांश यही है कि जीवात्मा परामात्मा को खोज रही है और एकांत स्थान में परामात्मा से मिलने के लिए चिंतित है। (दीक्षित:55)

डॉ. जनार्दन मिश्र के अनुसार –

विद्यापति अपने को पत्नी (राधा) समझकर ईश्वर (कृष्ण) की उपासना पति के रूप में करते थे। पदावली आध्यात्मिक विचारों और दार्शनिक गूढ़ रहस्यों से परिपूर्ण हैं। वैष्णवगण पूजा के समय विद्यापति की पदावली और जयदेव 'गीति के गोविंद' का पाठ किया करते थे। विद्यापति के समय में रहस्यवाद का जोरों से प्रचार था। स्त्री और पुरूष के रूप में जो जीवात्मा और परामात्मा की उपासना का प्रवाह बह रहा था, विद्यापति ने अपने को भी उसी प्रवाह में बहा दिया। (दीक्षित:23)

श्री कुमारस्वामी विद्यापति के पदों को प्रतीकात्मक घोषित करते हैं। उनके अनुसार –

विद्यापति का काव्य गुलाब है, गुलाब। चारों तरफ से केवल गुलाब। यह आनंद निकुंज है। यहाँ हमें स्वर्ग का दर्शन होता है- वृंदावन की कृष्ण लीला शाश्वत स्वर्ग का दर्शन है। वृंदावन मनुष्य का हृदय देश है। यमुना का किनारा इस संसार का प्रतीक है जो राधा और कृष्ण अर्थात् जीव और ब्रह्म की लीला-भूमि है। वंशी की ध्वनि अदृश्य सत्ता की आवाज है, जीव को परामात्मा की ओर अग्रसर होने का आह्वान है। (सिंह 2017:70)

डॉ. श्यामसुंदर दास भी विद्यापति को वैष्णव आचार्य निम्बार्क और विष्णुस्वामी से प्रभावित मानते हैं। डॉ. जयनाथ नलिन का कहना है –

जार्ज ग्रियर्सन ने विद्यापति के पदों को भक्ति रसमयता की समानता, सोलोमन के पवित्र गीतों से की है। एक ईसाई जब अपने पवित्र धर्म-तत्वों की समानता के अन्य धर्म के तत्वों को रखता है, तो निश्चय ही उसके निर्णय का बहुत बड़ा मूल्य लगता है। (दीक्षितः55)

इस प्रकार अनेक विद्वानों के मतों को देखने के पश्चात अब यहाँ रामवृक्ष बेनीपुरी की 'विद्यापति की पदावली' के पदों के आधार पर पदावली में चित्रित भक्ति भावना को प्रमुख बिंदुओं के आधार पर अध्ययन विश्लेषण किया गया है।

4.2.1.1 आराध्य का स्वरूपः

कवि शिरोमणि विद्यापति की पदावली में चित्रित भक्ति के बारे में यदि बात की जाए, तो सर्वप्रथम यह प्रश्न उदित होता है कि उनके आराध्य कौन हैं अथवा आराध्य का स्वरूप क्या है? इस प्रश्न का समाधान करने के लिए पदावली के पदों का अध्ययन आवश्यक है, क्योंकि तभी सटीक रूप से कहा जा सकता है कि विद्यापति के आराध्य कौन हैं? पदावली के पदों का अध्ययन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि विद्यापति ने किसी एक आराध्य की भक्ति नहीं की। बल्कि कवि ने कृष्ण, राधा, शिव, शक्ति, भैरवी, गंगा तथा जानकी- सभी के प्रति अपनी भक्ति प्रदर्शित की है। विद्यापति ने पदावली का पहला पद जो मंगलाचरण के रूप में

रचा है, उसमें अपने इष्ट के रूप में कृष्ण की वंदना की है। कवि प्रारम्भ में ही अपने काव्य की सकुशल सम्पूर्णता के लिए प्रार्थना करते हैं-

नंदक नंदन कदम्बेरि तरु-तर, धिरे-धिरे मुरलि बोलाब।

समय सँकेत-निकेतन बइसल, बेरि-बेरि बोलि पठाब।।

सामरि, तोरा लागि, अनुखन बिकल मुरारि।।

जमुनाक तिर उपवन उद्वेगल, फिर-फिर ततहि निहारि।

गोरस बिकनिके अबइत जाइत,जनि-जनि पुछ बनमारि।।

तोहे मतिमान, सुमति मधुसूदन बचन सुनह किछु मोरा।

भनइ विद्यापति सुन बरजौवति बंदह नंद-किसोरा।। (बेनीपुरी 2011:35)

यहाँ विद्यापति ने 'नंदक नंदन' अर्थात् कृष्ण (परामात्मा) की वंदना की है। नंद के पुत्र कृष्ण कदम्ब के पेड़ के नीचे बैठकर मंद स्वर में मुरली बजा रहे हैं। निर्धारित स्थान पर समयानुसार राधा को न देखकर कृष्ण बार-बार बाँसुरी बजाकर राधा को बुला रहे हैं। दूती के माध्यम से कवि विद्यापति यहाँ कृष्ण को 'मुरारि' और 'मधुसुदन' कहकर राधा (जीवात्मा) को नंदकिशोर की वंदना करने को कह रहे हैं। यहाँ कृष्ण और राधा सामान्य नायक-नायिका न होकर परामात्मा और जीवात्मा हैं। इस प्रकार यहाँ कवि विद्यापति ने कृष्ण को इष्ट रूप में माना है।

अपरूप के कवि विद्यापति ने राधा की वंदना भी की है। 'देख देख रूप अपारा।' (बेनीपुरी 2011:35/36) पद में राधा को कृष्ण की आह्लादिका शक्ति की संज्ञा देकर उसकी अपार और अनंत सौंदर्य का वर्णन कर कवि ने वंदना की है। किसी नवीन विधाता द्वारा आकाश और पाताल के सार से राधा के इस अपूर्व तथा अनिद्य सौंदर्य का निर्माण किया गया है। कवि कहते हैं कि राधा की शोभा के समक्ष अनंत सौंदर्यशाली कामदेव भी अधीर होकर मुर्च्छित हो जाते हैं। क्योंकि, राधा का सौंदर्य दिव्य है, कामोद्दीपक

नहीं। स्वयं कृष्ण भी राधा के सौंदर्य को देख पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं। कितनी लक्ष्मियाँ अपने को राधा के चरण तल में न्योछावर करती हैं। इस प्रकार कवि ने राधा की अलौकिक सौंदर्य वर्णन किया है।

विद्यापति शिवजी के अनन्य भक्त थे। पदावली में शिवभक्ति के अनेक पद प्रसिद्ध हैं-

हर जनि बिसरब मोर ममता, हम नर अधम परम पतिता।
तुअ सन् अधमउघार न दोसर, हम सन् जग नहि पतिता।।
जम के द्वार जवाब कओन देब, जखन पुछत कर धरिआ।।
जब जम किंकर कोपि पठाओत, तखन के होत धरहरिआ।।
भन विद्यापति सुकवि पुनित मति, संकर विपरीत बानी।
असरन सरन सिर नाओल, दया करह सुलपानी।। (बेनीपुरी 2011:152)

प्रस्तुत पद में विद्यापति ने सच्चे भक्त के रूप में स्वयं को महापापी तथा निकृष्ट बताकर शिव (हर) से अपने उद्धार की प्रार्थना की है। भगवान शिव की स्तुति दीन भाव से करते हुए अपने प्रति उनकी ममता सदैव बनाए रखने के लिए कवि ने कहा है। ख़ुद को सब नरों में अधम और नीच तथा शिव को पापियों का उद्धारक कहा है। कवि ने अपनी मरणबेला के क्षणों को सोचकर कहा है कि जब यमराज अपने दूतों को उन्हें लेने भेजेंगे, तो उस क्षण कौन उनकी सहायता करेगा? वृद्धावस्था में जब वाणी अस्पष्ट होने लगेगी, तो कवि शिवजी का नाम किस प्रकार लेंगे। इसलिए कवि शुलपानि (शिव) के चरणों में शरणागत हुए हैं।

इसी प्रकार 'एत तप-जप हम की लागि कएलहुँ, कथिला कएल नित दाना' (बेनीपुरी 2011:152), 'कखन हरब दुख मोर है भोलानाथ' (बेनीपुरी 2011:153) आदि पदों में कवि ने विनय भाव से शिव की आराधना की है।

पदावली के भक्ति विषयक पदों में पशुपति भामिनी भैरवी वंदना का पद उल्लेखनीय है, जो इस प्रकार है-

जय जय भैरवी असुर भयाउनि, पसुपति भामिनि माया।
सहज सुमति बर दिअ हे गोसाउनि, अनुगति गति तुअ पाया।।
बासर-रैनि सबासन् सोभित चरन, चंद्रमणि चूड़ा।
कतओक दैत्य माति मुँह मेलल, कतेक उगिलि करु कुड़ा।।
सामर बरन, नयन अनुरंजित, जलद-जोग फुल कोका।
कट कट विकट ओठ-पुट पाँड़रि, लिधुर-फेन उठ फोका।।
घन-घन घनन घुघुर कत बाजए, हन हन कर तुअ काता।
विद्यापति कवि तुअ पद सेवक, पुत्र बिसरु जनि माता।। (बेनीपुरी 2011:36)

यहाँ कवि विद्यापति ने असुरों को भयभीत करनेवाली मायास्वरूपा भैरवी के रौद्ररुप की स्तुति की है। देवी की सतत कृपा के अभिलाषी विद्यापति ने उनके स्वरूप का वर्णन कर कहा है कि-देवी रात-दिन शवासन पर अधिष्ठित रहती हैं। उनके मस्तक पर चंद्रकांतमणि सुशोभित है। न जाने कितने दैत्यों को मारकर देवी ने मुँह में डाल दिया और कितनों ही को उगलकर कूड़े की तरह ओंक दिया। देवी के श्याम वरण और लाल नेत्र कवि को बादलों के बीच रक्त कमल जैसा प्रतीत होते हैं। दांतों से कटकटाहट का विकट शब्द का निनाद हो रहा है। निरंतर रक्तपान करने के कारण देवी के होंठ पाटल के पुष्प की भाँति लाल हैं, जिनके मध्य रक्त के झाग और बुलबुले उठ रहे हैं। देवी के पैरों के नूपुर घने बादलों की तरह गूँज गरजती है और खड्ग हनहन करता हुआ दैत्यों का सतत विनाश करती है। अतः देवी ही महामाया है, यह पूरा विश्व ब्रह्माण्ड उनकी ही स्थूल काया है। इसी प्रकार 'कनक-भूधर-शिखर-बासिनि, चंद्रिका-चय-चारु-हासिनि।' (बेनीपुरी 2011:149/150) में आदिशक्ति दुर्गा की विभिन्न रूपों में विद्यापति ने वंदना की हैं। पद में कवि ने देवी दुर्गा की सौंदर्यशाली स्वरूप की स्तुति करते हुए उनके शत्रुओं के प्रति आक्रामक भाव प्रकट किया है।

विद्यापति की पदावली में गंगा-स्तुति का विशेष महत्त्व है। गंगा नदी भारतीय आध्यात्मिक भावना का हृदय मानी जाती है। पुण्य सलिला, गंगा के स्मरण मात्र से समस्त पाप धुल जाते हैं और इसमें स्नान

करने से अथाह पुण्य की प्राप्ति होती है। गंगा नदी के साथ विद्यापति की एक किंवदंती प्रसिद्ध है। कहते हैं कि अपना अंतिम समय जानकर विद्यापति गंगा तट की ओर चल पड़े। परंतु शारीरिक अस्वस्थता के कारण तट तक वे न पहुँच सके और दो मील पहले ही उन्हें रुकना पड़ा। लोकविश्वास के अनुसार विद्यापति के विनय करने पर गंगा की धारा उस स्थान तक मुड़ गई और आज तक मुड़ी हुई है। कविवर विद्यापति ने भी गंगा के प्रति अपनी भक्ति प्रदर्शित की है-

कतसुख सार पाओल तुअ तीरे। छाड़इते निकट नयन बह नीरे।।

कर जोरि विनमओं विमल तरगें। पुन दरसन् होअ पुनमति गंगे।।

एक अपराध छेमब मोर जानी। परसल माए पाए तुअ पानी।।

कि करब जप तप जोग धेआने। जनम कृतारथ एकहि सनाने।।

भनइ विद्यापति समदओं तोहि। अंत काल जनु बिसरह मोहि।। (बेनीपुरी 2011:155)

यहाँ कवि गंगा की स्तुति करते हुए कहते हैं कि गंगा के तट पर रहकर उन्हें बड़ा ही सुख मिला। इस कारण तट छोड़ते समय कवि को अपार दुख हो रहा है। कवि दोनों हाथ जोड़कर उज्ज्वल तरंगों वाली गंगा की वंदना कर विनती करते हैं कि उनका दर्शन कवि को बारम्बार मिलता रहे। गंगा के पवित्र जल को अपने पाँव से स्पर्श करने की अपराध के लिए कवि उनसे क्षमा याचना करते हैं। कवि जप, तप, योग, ध्यानादि सभी को व्यर्थ बताकर गंगा में स्नान करने से ही जीवन की कृतार्थता मानते हैं। अतः विद्यापति बारम्बार विनती करते हैं कि अंतकाल में भी गंगा उन्हें न भूलें।

पदावली में जानकी वंदना का पद भी मिलता है। कविवर विद्यापति ने तत्कालीन राजा को सम्बोधित कर जानकी माता के प्रति अपनी भक्तिमय वंदना प्रकट की है, जो इस प्रकार है-

रे नरनाह सतत भजु ताही। जाहि नहि जननि जनक नहि जाही।।

बसु नइहरा ससुरा के नाम। जननिक सिर चढ़ि गेली ओही गाम।।

सासुक कोर में सुतल जमाए। समधि विलह तँ बिलहल जाए।।

जाहि उदर सँ बाहर भेलि। से पुनि पलटि ततहि चलि गेलि।।

भनइ विद्यापति सुकवि सुजान। कविक मरम कें कवि पहिचान।। (बेनीपुरी 2011:154)

यहाँ कवि जगज्जननी जानकी माता को निरंतर भजन करने के लिए राजा से कहते हैं। जानकी की न माता है, न पिता। वह तो ससुराल रहकर भी अपनी माता के ही घर रही, क्योंकि जानकी की उत्पत्ति पृथ्वी से हुई थी। जानकी के पति श्रीराम भी अपनी सास की गोद में सोते थे। फिर जिस पृथ्वी से जानकी का जन्म हुआ था उसी में वह पुनः समा गईं।

जीवन के अंतिम समय में कवि विद्यापति संसार की नश्वरता और ईश्वर के शाश्वत होने का वर्णन कर पश्चाताप करते हुए भगवान कृष्ण से अपने उद्धार की प्रार्थना करते हैं-

तातल सैकत बारि-बिंदु सम, सुत मित-रमनि-समाजे।
तोहि बिसारि मन नाहि समरपल, अब मझु होब कोन काजे।।
माधव, हम परिनाम निरासा।
तोहें जगतारन दीन दयामय, अतए तोहर बिसबासा।। (बेनीपुरी 2011:156)

यहाँ कवि विद्यापति स्वयं को कृष्ण के चरणों में समर्पित कर कहते हैं कि जिस प्रकार तप्त बालू में गिरे जल बिंदु तुरंत सूख जाता है, उसी प्रकार पुत्र, मित्र और स्त्री से निर्मित समाज सभी नश्वर हैं। अब कवि को केवल भगवान कृष्ण पर ही भरोसा है।

इस प्रकार कविवर विद्यापति ने पदावली में कृष्ण, राधा, शिव, दुर्गा, भैरवी, गंगा तथा जानकी की स्तुति-वंदना की है। इन्हीं को अपना इष्ट माना है। अर्थात् विद्यापति ने किसी एक इष्ट के प्रति भक्ति नहीं की, बल्कि उन्होंने बहु देव-देवियों के प्रति भक्ति प्रदर्शित की है।

महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री आदि जैसे विद्वान विद्यापति को पंचदेवोपासक मानते हैं। कपिलतंत्र के अनुसार पंचदेव हैं- विष्णु, शक्ति, सूर्य, शिव और गणेश। ये क्रमशः आकाश, अग्नि, वायु, पृथ्वी और जल के अधिपति हैं। ये ही पंचतत्व हैं। ये पंचतत्व अव्यक्त ब्रह्म के ही व्यक्त स्वरूप है। अतः पंचदेवोपासना ब्रह्म की ही उपासना है। (दीक्षित:27)

डॉ. आनंदप्रकाश दीक्षित ने इसकी आलोचना करते हुए विद्यापति के बारे में अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया है-

विद्यापति ने न तो अपने किन्हीं पदों में इन पाँच तत्वों की चर्चा की है न ही इनके अधिपति पाँच देवों की ही। सूर्य और गणेश की स्तुति अथवा उपासना विद्यापति में कहीं भी नहीं है। विद्यापति की पंचदेवोपासना में कुछ भी निष्ठा होती तो वे कम से कम चमत्कार के लिए ही सही अपने पदों में ही पंचतत्वों और उनके अधिपति पंचदेवों को लेकर अपनी चातुरी प्रकट करते। (बेनीपुरी 2011:28)

प्रस्तुत आलोचना के पश्चात हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि निःसंदेह विद्यापति अनेक देवोपासक थे।

अब तक भारतीय भक्ति साधना के मूलतः दो भेदों का प्रचलन हैं- एक है सगुण और दूसरा है निर्गुण। गीता में सगुण और निर्गुण के बारे में कहा गया है-

सारे ब्रह्माण्ड की व्यवस्था, पालन व संहार करनेवाली सत्ता को हम ब्रह्म, भगवान या परामात्मा कहते हैं। अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा अर्थात् ब्रह्म के दो स्वरूप हैं एक है निर्गुण(निराकार) और दूसरा है सगुण(साकार)। यह सृष्टि इन दोनों प्रकार के ब्रह्म से ही चल रही है। (गीता में सगुण और निर्गुण भक्ति, 2018)

डॉ. नगेंद्र ने अपने ग्रंथ हिन्दी साहित्य का इतिहास में सगुण और निर्गुण के बारे में इस प्रकार लिखा है-

उपासना भेद का आश्रय लेकर प्रायः भक्ति विषयक सगुण और निर्गुण जैसे दो वर्गों की कल्पना कर ली जाती है। सगुण भक्ति में जहाँ लीलावतार को आराध्य स्वीकार किया गया है, वहाँ निर्गुण भक्ति में ब्रह्मानुभूति को स्थान दिया गया है। सगुण भक्ति में जहाँ भगवदनुग्रह का भरोसा होता है, वहाँ निर्गुण में आत्मविश्वास का बल होता है। सगुण में जहाँ बाह्य लालित्य की महिमा से मण्डित है, वहाँ निर्गुण भक्ति अंतःयौंदर्य की गरिमा से दीप्त। सगुण भक्ति साकार तथा सविशेष के प्रति होती है वहाँ निर्गुण भक्ति निराकार तथा निर्विशेष के प्रति। (नगेंद्र 1973:109)

जहाँ तक महाकवि विद्यापति के सगुण अथवा निर्गुण होने का प्रश्न है, तो कवि ने अपनी अमर कृति पदावली में कृष्ण, राधा, शिव, शक्ति, गंगा आदि साकार रूपों की ही उपासना की है। निराकार इष्ट की उपासना नहीं की। किंतु कवि विद्यापति को सगुणवादी मानने या कहने से पूर्व हिन्दी के प्रतिष्ठित तथा समर्थ आलोचक आचार्य रामचंद्र शुक्ल और डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी के मतों को देख लेना उचित होगा।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने निर्गुण और सगुण दोनों को एक ही प्रकार की साधनाओं के रूप में मानकर कहा है-

ब्रह्म हमारे मन और इंद्रियों के अनुभव में आ सकता है वहाँ तक हम उसे सगुण और व्यक्त कहते हैं, पर यही तक इसकी महत्ता नहीं है। उसके आगे भी उसकी अनंत सत्ता है इसके लिए हम कोई शब्द न पाकर निर्गुण, अव्यक्त आदि निषेधवाचक शब्दों का आश्रय लेते हैं। (सिंह 2017:90)

डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार-

बहुत सी ऐसी बातें हैं, जिनमें सगुण और निर्गुण मतवादी भक्त समान हैं। सभी भक्त अपनी दीनता पर जोर देते हैं, आत्मसमर्पण में विश्वास रखते हैं और भगवान की कृपा से मुक्ति मिल जाती है, इस बात का सम्पूर्ण रूप से विश्वास करते हैं। (सिंह 2017:91)

इस प्रकार आचार्य रामचंद्र शुक्ल और डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी दोनों ही ने सगुण और निर्गुण सम्प्रदायों के बीच समता की बात की है। इनके अनुसार सगुण और निर्गुण अलग होने पर भी परस्पर विरोधी नहीं है।

सगुण और निर्गुण मतों की चर्चा करते हुए डॉ. शिवप्रसाद सिंह लिखते हैं-

भ्रमवश ऐसा मान लिया गया है कि सूरदास तथा अन्य अष्टछापी कवियों के साहित्य में निर्गुण की जो विडम्बना की गई है वह इस बात का सबूत है कि ये कवि निर्गुण मत के कवियों से प्रभावित नहीं हुए और उनका भक्ति काव्य बीच के इन संत कवियों से संबंधित न होकर जयदेव और विद्यापति से जोड़ा जाना चाहिए। मैं कदापि नहीं कहता कि जयदेव और विद्यापति का प्रभाव नहीं पड़ा, किंतु संत कवियों ने सगुण मतवादी कृष्ण काव्य के निर्माण में जो महत्त्वपूर्ण योग दिया है उसे कभी अस्वीकार नहीं किया जा सकता। इन कवियों की भक्ति संबंधी कविताओं की पचीसों बातें सिधे निर्गुण मतवादी कवियों की परम्परा से प्राप्त हुई। (सिंह 2017:92)

आगे डॉ. शिवप्रसाद सिंह विद्यापति के पदों की समीक्षा करते हुए लिखते हैं-

विद्यापति के ये पद न केवल उस समय की भक्ति पद्धति की एक खास विशेषता की सूचना देते है बल्कि इनसे यह मालूम होता है कि उनसे स्तुतिपरक पद सगुण-निर्गुण दोनों प्रकार के भक्ति काव्यों की परम्परा में हैं और उन्हें प्रभावित करनेवाले हैं। (सिंह 2017:93)

इस प्रकार भिन्न विद्वानों के मतों के अध्ययन के आधार पर कवि विद्यापति को सगुण अथवा निर्गुण मानने की एकपक्षीय धारणा को ही हमें बदलना उचित जान पड़ता है।

4.2.1.2 भक्ति पद्धतिः

कवि विद्यापति ने पदावली में राधा-कृष्ण के विशुद्ध प्रेम की लीलाओं का वर्णन किया। इससे आपने रसिकों और भक्तों उभयों के मन को जीत लिया। भक्ति के अंतर्गत आनेवाली पद्धतियों में नवधा भक्ति का

स्थान अन्यतम माना जाता है। श्रवण, कीर्तन, स्मरण, अर्चन, पादसेवन, दास्य, सख्य, वंदन और आत्मनिवेदन ही नवधा भक्ति के अलग-अलग रूप हैं।

भगवान का लीलागान भक्ति का विशेष अंग है। पदावली के पदों में विद्यापति ने भी अपने आराध्यों का लीलागान किया है। कृष्ण, राधा, शिव, शक्ति, गंगा इत्यादि के प्रति लीलागान कवि ने किया है। भगवान की लीलाओं को तन्मयता से सुनना और उसमें सुध-बुध भुलाकर उसकी लीलाओं का ध्यान-ये सभी कीर्तन में समाविष्ट हैं। चैतन्य महाप्रभु जैसे वैष्णव भक्त विद्यापति के पदों को गाकर आत्मविस्मृत एवं मूर्च्छित हो जाते थे। बंगाल के जनमानस में आज भी विद्यापति के पद लोग अत्यंत आदर और श्रद्धापूर्वक गाते और कीर्तन करते हैं।

विद्यापति की पदावली में अर्चन भक्ति के कई पद मिलते हैं। उदाहरणस्वरूप-

सिव हो, उतरब पार कओन बिधि।
लोढ़ब कुसुम तोरब बेलपात। पुजब सदाशिव गौरिक साथ।।
बसहा चढ़ल सिब फिरए मसान। भंगिआ जरठ दरदो नहि जान।।
जप तप नहि कएलहुँ किछु दान। बिति गेल तिन पन करइत आन।।
भन विद्यापति सुनहु महेस। निरधन जानि मोर हरह कलेस।। (बेनीपुरी 2017:152)

प्रस्तुत पद में कवि देवाधिदेव शिवजी की पूजा-अर्चना के लिए पुष्पों को चुनकर तथा बेलपत्र तोड़कर लाने की बात स्पष्ट कह रहे हैं। जीवन की अवसान बेला में पश्चाताप करते हुए कवि दीन भाव से आराध्य शिव की अपने उद्धार हेतु प्रार्थना कर रहे हैं।

भगवान के किसी भी रूप की कल्पना तथा प्रतिमा आदि की परिचर्या या सेवा करना ही पादसेवन है। पदावली में पादसेवन के भी पद मिलते हैं। उदाहरणस्वरूप- 'जय-जय भैरवी असुर भयाउनि, पसुपति

भामिनी माया।' (बेनीपुरी 2011: 36) में कवि ने पशुपति भामिनी अर्थात् शिव की अर्द्धांगिनी भैरवी के रौद्ररूप की कल्पना कर उनकी स्तुति की है। यहाँ कवि ने देवी की जय-जयकार कर उनके चरण कमलों को ही उद्धार का एकमात्र अवलम्ब बताया है।

भगवान के चरणों में नतमस्तक होकर की गई स्तुति-प्रार्थना, श्रोत्र आदि ही वंदन भक्ति है। पदावली में वंदन के पद उल्लेखनीय हैं। कृष्ण, शिव, दुर्गा, गंगा आदि को अपने इष्ट रूप में कवि ने वंदना की है। उदाहरणस्वरूप-

भल हर भल हरि भल तुअ कला। खन पित बसन् खनहि बघछाला।।

खन पंचानन खन भुजचारि। खन संकर खन देव मुरारि।।

खन गोकुल भए चराइअ गाए। खन भिखि माँगिए डमरु बजाए।।

खन गोबिंद भए लेअ महादान। खनहि भसम भरु काँख बोकान।।

एक सरीर लेत दुइ बास। खन बैकुंठ खनहि कैलास।।

भनइ विद्यापति बिपरीत बानि। ओ नाराएन ओ सुलपानि।। (बेनीपुरी 2011:150)

प्रस्तुत पद में विद्यापति ने विष्णु और शिव के एकात्मक स्वरूप का वर्णन कर उनकी स्तुति-वंदना की है। दोनों की ही लीलाओं और रूपों का चित्रण कर सर्वशक्तिमान परामात्मा की प्रार्थना कवि ने की है।

'जतेक जतेक धन पापें बटोरलुँ, मिलि-मिलि परिजन खाए।' (बेनीपुरी 2011: 156) पद में संसार की क्षणभंगुरता, स्वार्थपरता का चित्रण करते हुए विद्यापति ने दास्य भाव से अपनी आत्मग्लानि को अभिव्यक्त किया है। कविवर विद्यापति को जीवन की अंतिम समय में पश्चताप होता है कि उन्होंने यौवनकाल के सुनहरे समय में हरि भक्ति न कर व्यर्थ गँवा दिया। प्रस्तुत पद में कवि कहते हैं कि जीवनभर उन्होंने जितनी धन-सम्पदा बटोरी, वे सब परिजनों ने मिलकर खाया। किंतु अब मरण समय में उनकी सुध लेनेवाला कोई नहीं है। हरिभक्ति का अमृत छोड़कर कवि केवल केलि विलास के विष को ही पीते रहे।

इसलिए कवि अत्यंत दैन्य भाव से हरि के चरणों में आत्मसमर्पण करते हैं। इसी प्रकार आत्मनिवेदन करते हुए अत्यंत दैन्य भाव से कवि का भक्त हृदय की पहचान एक अन्य पद में द्रष्टव्य है-

माधव, बहुत मिनति कर तोहि।
दए तुलसी तिल देह समरपल, दया जनि छाड़ब मोहि।।
गनइत दोस गुन-लेस न पाओब, जब तोहें करब बिचार।
तोहें जगनाथ जगत कहाओसि, जगबाहर नहि मञि छार।।
किअ मानुस पसु पखि भए जनमिअ, अथवा कीट पतंग।
करम बिपाक गतागत पुनु पुनु, मति रह तुअ परसंग।।
भनइ विद्यापति अतिसय कातर, तरइते ई भव-सिंधु।।
तुअ पद-पल्लव केर अवलंबन, तिला एक देह दिनबंधु।। (बेनीपुरी 2011:156)

प्रस्तुत पद में कवि ने कातर भाव से माधव के प्रति अनन्य भक्ति प्रदर्शित कर आत्मनिवेदन किया है। प्रभु से कवि बारम्बार यही विनती करते हैं कि उन पर कृपा कर उन्हें इस भवसागर से पार लगाए। अब तो माधव ही उनका एकमात्र सम्बल है। इस प्रकार सख्य भक्ति को छोड़कर नवधा भक्ति के अन्य सभी रूप विद्यापति की पदावली में विद्यमान है।

पदावली में माधुर्य भक्ति के गुण भी विद्यमान हैं। माधुर्य मनुष्य की उस चित्तवृत्ति की अवस्था है, जिसमें मधुर भावनाओं की अभिव्यक्ति होती है। भक्ति के क्षेत्र में भक्त जब भगवान को प्रेमी या प्रेमिका अथवा पति या पत्नी मानकर भक्ति प्रदर्शन करे तो वही माधुर्य भक्ति कहलाता है। नवधा भक्ति में भक्त भिन्न भावों से भक्ति कर सकता है। किंतु माधुर्य भक्ति में भक्त स्वयं भगवान के सबसे करीब मानकर भक्ति करता है। पदावली के अधिकांश पद राधा-कृष्ण विषयक प्रेम से सम्बंधित हैं। कवि विद्यापति ने राधा को ही कृष्ण के सबसे प्रिय के रूप में प्रस्तुत किया है। एक प्रकार से पदावली में चित्रित राधा-कृष्ण के प्रेम सम्बंध को कवि ने माधुर्य भक्ति से सराबोर कर दिया है।

इस संदर्भ में डॉ. शिवप्रसाद सिंह ने लिखा है-

कृष्ण भक्ति की जो धारा कालांतर में माधुर्य रस से ओतप्रोत होकर वल्लभ, राधावल्लभ तथा चैतन्य और निम्बार्त संप्रदायों में निरंतर प्रवाहित होती रही, उसका आदि श्रोत भाषा काव्य में सर्वप्रथम विद्यापति की पदावली से निःसृत हुआ। विद्यापति के ऊपर अपने समसामयिक दरबारी जीवन, ह्रासशील संस्कृति और शृंगारिक वातावरण का प्रभाव कम नहीं पड़ा, किंतु उनके समर्थ व्यक्तित्व ने इस पतनोन्मुख वासना की धारा को राधाकृष्ण प्रेम के चित्रण के माध्यम से परिवर्तित करने का प्रयत्न भी कम नहीं किया। विद्यापति के कृष्ण को हम सही अर्थों में तभी समझ सकते हैं, जब कृष्ण के विषय में प्रचलित माधुर्य विषयक साधनाओं का सही रूप समझ सकेंगे। (सिंह 2017:143)

इस प्रकार मैथिल कोकिल कवि विद्यापति की पदावली के भक्ति विषयक पदों में नवधा भक्ति के साथ माधुर्य भक्ति भावना का भी चित्रण मिलता है।

4.2.2 कीर्तन-घोषा में चित्रित भक्ति भावनाः

कीर्तन-घोषा महापुरुष शंकरदेव की धार्मिक तथा साहित्यिक जीवन का सर्वश्रेष्ठ कीर्तिस्तंभ रहा है। धर्म तथा साहित्य के साथ-साथ मध्ययुगीन पतनोन्मुख असमीया धर्म, समाज, संस्कृति, भाषा को एक नई दिशा प्रदान करने का दायित्वभार शंकरदेव ने अपने कंधों पर उठाया और उसे निभाया भी। उन्होंने असम में नववैष्णव धर्म का प्रवर्तन किया। जिसे 'एकशरण हरिनाम धर्म' या 'महापुरुषीया धर्म' भी कहा जाता है। महत्त्व की बात यह है कि एकशरण हरिनाम धर्म के प्रचार-प्रसार के मूल में सबसे बड़ा योगदान कीर्तन-घोषा का ही रहा है। मूल श्रीमद्भागवत महापुराण के अलावा पद्मपुराण, ब्रह्मपुराण, विष्णुपुराण इत्यादि पुराणों का आधार लेकर शंकरदेव ने एक कथात्मक भक्तिकाव्य के रूप में कीर्तन-घोषा की रचना की। इसके घोषा पदों को गाकर असमीया भक्तवत्सल समाज वैष्णव भक्ति से गदगद हो उठता है।

4.2.2.1 आराध्य का स्वरूपः

श्रीमंत शंकरदेव ने कलिकाल में भक्ति को ही मनुष्य की मुक्ति का परम उपाय बताया है। श्रीमद्भागवतपुराण को शंकरदेव ने 'पुराण सूर्य', 'वैकुंठ का शास्त्र' आदि नामों से अभिहित किया है, जिसे उन्होंने अपनी भक्ति का आधार ग्रंथ के रूप में ग्रहण किया है। श्रीमद्भागवतपुराण में श्रीकृष्ण को ही भगवान का पूर्णावतार स्वीकार किया गया है- 'कृष्णस्तु भगवान स्वयम' (शईकीया 2008: 61)। शंकरदेव ने भी श्रीमद्भागवतपुराण के अनुसार परमपुरुष आनंदमय श्रीकृष्ण के विराट स्वरूप को ही अपना इष्ट माना है। कीर्तन-घोषा के अध्ययन के आधार पर कहा जा सकता है कि शंकरदेव ने विष्णु के नरावतार कृष्ण की ही भक्ति की है, जो दैवीय और मानवीय गुणों से अपूर्व समन्वित रूप है। शंकरदेव ने कृष्ण के अतिरिक्त अन्य किसी की उपासना को अपने एकशरण हरिनाम धर्म में स्थान नहीं दिया है। निम्नलिखित पद से इस बात की पुष्टि होती है-

शुना सर्बजन एरि आन मन
स्थिर करि एक मति।
कृष्ण-नाम बिन इटो कलि-युगे
नाहि नाहि आन गति।। (गोस्वामी 1989:403)

यहाँ कवि कहते हैं- सभी सुनो, अन्य बातों को त्यागकर एकनिष्ठ भाव से केवल कृष्ण का नाम लो। क्योंकि कृष्ण नाम स्मरण के अतिरिक्त कलियुग में मुक्ति का अन्य उपाय नहीं है।

इसी प्रकार शंकरदेव ने 'कीर्तन-घोषा' में चित्रित किया है कि कृष्ण ही हमारे शरणदाता हैं और हम भक्त उनके शरणार्थी हैं-

कृष्णर चरणे सवे लैलंत शरण।
हरि बिना नाहि आर दुर्गति-तारण।।

एहि बुलि बायु भक्षि निद्रा परिहरि।

माधवक आराधंत कष्ट-ब्रत धरि।।

कहे कृष्ण-किंकरे शंकरे कृष्ण कथा।

बोला हरि-हरि जन्म नकरियो बृथा।। (गोस्वामी 1989:76)

प्रस्तुत पद में कवि कहते हैं कि, सभी कृष्ण के ही शरणागत हो जाओ, क्योंकि उनके बिना कोई दूसरा दुखों से उबारनेवाला नहीं मिलेगा। इसलिए हमें सभी सुख तथा भोजन, निद्रा त्याग कर कष्टसहित माधव की आराधना करनी चाहिए। अतः कृष्ण के दास शंकरदेव ने सभी को मनुष्य जनम को व्यर्थ न करते हुए हरिनाम धर्म लेने का उपदेश दिया है।

इस प्रकार शंकरदेव ने मानव जाति को सभी दुखों से निवृत्ति पाने के लिए एकशरण हरिनाम धर्म भक्ति का सरल मार्ग बताया है। 'कीर्तन-घोषा', जो उनकी सर्वश्रेष्ठ कृति है, उसमें उन्होंने कृष्ण कृपा बिना आध्यात्मिक पूर्णता असम्भव बताया है। भक्ति के नाम पर समाज विमुख होकर रामनामी रटनेवालों के वे खिलाफ थे। एकनिष्ठ भाव से कृष्णरूपी ब्रह्म की उपासना ही नववैष्णव धर्म के प्रवर्तक शंकरदेव का प्रमुख लक्ष्य रहा है।

शंकरदेव के नववैष्णव धर्म का दार्शनिक आधार भागवत पुराण पर आधारित वेदांत सिद्धांत है। वेदांत दर्शन को आधार मानकर ही शंकरदेव ने अपनी रचनाओं के माध्यम से सगुण भक्ति का प्रतिपादन किया। किंतु उन्होंने यह निरक्षर तथा सर्वसाधारण लोगों की बोधगम्यता के लिए किया। जबकि शंकरदेव की उपासना निर्गुण ब्रह्म की सगुणोपासना है। 'कीर्तन-घोषा' के पहले पद में ही शंकरदेव ने सनातन धर्म के गूढ़ तथ्य को स्पष्ट किया है, जो इस प्रकार है-

प्रथमे प्रणामो ब्रह्मरूपी सनातन।

सर्ब अबतारर कारण नारायण।। (गोस्वामी 1989:1)

अर्थात् शंकरदेव सर्वप्रथम ब्रह्मरूपी सनातन को प्रणाम करते हैं, जो सब अवतारों के कारण है।

अब शंकरदेव के आराध्य श्रीकृष्ण रूपी ब्रह्म का स्वरूप पूर्णरूपेण जानने हेतु तथा शंकरदेव वास्तव में सगुण के उपासक हैं या निर्गुण है कुछ विद्वानों के मतों को देखा जा सकता है। डॉ. लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा ने 'कीर्तन-घोषा' के प्रथम पद के संदर्भ में अपने ग्रंथ 'महापुरुष श्रीशंकरदेव आरु महापुरुष श्रीमाधवदेव' में लिखते हैं-

एने सुंदर आरंभण आन धर्म ग्रंथत बा अन्य ग्रंथत बिरल। शंकरदेवे प्रथमेइ सनातन ब्रह्मक प्रणाम करिछे, यि ब्रह्म निजे अपरिवर्तशील आरु चिरंतन अथच सेइ ब्रह्मइ केंद्र आरु सकलो अबतारेरे कारण हय सकलोरे परिबर्तन साधन करिब लागिछे। (बेजबरुवा 1968:412)

अर्थात् ऐसा सुंदर प्रारंभ अन्य धर्मग्रंथ या किसी ग्रंथ में मिलना असंभव है। शंकरदेव ने पहले पद में ही सनातन ब्रह्म को प्रणाम किया है, जो ब्रह्म स्वयं अपरिवर्तनीय और चिरंतन हैं। वे ही ब्रह्म केंद्र और सभी अवतारों का कारण बनकर सभी परिवर्तन साधन कर रहे हैं।

आगे डॉ. लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा ने सगुण, निर्गुण तथा ब्रह्म की धारणा पर विचार व्यक्त करते हुए अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया है-

ईश्वर साकार माने तेउ प्रकृत आकार धराटो बुजिले ठिक नहय। आकार बुलिलेइ आमार पंचभूतत्वक प्राकृतिक आकारलै तत्क्षणात् भबाटो जोवा सहज। किंतु ईश्वर प्राकृतिक आकारेरे साकार नहय। तेउर आकार प्राकृतिक आकारर बहिर्भूत अर्थात् Transcendental, किंतु तथापि रेउर आकार आछेई आछे, नतुबा तेउर अस्तित्व थाकिब नोवारे। एई अर्थत ईश्वर निराकार हयउ साकार आरु साकार हयउ निराकार। (बेजबरुवा 1968:413)

अर्थात् ईश्वर साकार यानी उनकी प्रकृत आकार मानना ठीक नहीं है। आकार कहने से हमारे पंचभूतत्वों को क्षण में समझ लेना आसान है। किंतु ईश्वर की आकार प्राकृतिक आकार से बहिर्भूत है अर्थात्

Transcendental है, किंतु फिर भी उनका (ईश्वर का) आकार है ही, नहीं तो उनका अस्तित्व नहीं होते। इस अर्थ में ईश्वर निराकार होकर भी साकार हैं और साकार होकर भी निराकार।

शंकरदेव के निर्गुण कृष्ण की उपासना के विषय में डॉ. महेश्वर नेओग का कथन है-

शंकरदेवर क्षिप्रगति कुसुममाला छंदर ‘गुणमाला’ पुथिखनो कीर्तन-घोषार श्रेणीर। इयात कबिये कोटमणि एधारिर दरे खुद खुद वाक्येरे निर्गुण कृष्णर गुणर माला गाथिछे। (नेओग 1962:86)

अर्थात् शंकरदेव की शीघ्रता से संपन्न कुसुममाला छंद में रचित 'गुणमाला ग्रंथ' भी 'कीर्तन-घोषा' की श्रेणी की है। इसमें कवि ने एक मोती की माला की भांति छोटे-छोटे वाक्य से निर्गुण कृष्ण के गुणों की माला गूँथा है।

डॉ. नगेन शइकीया अपने ग्रंथ ‘बिषय शंकरदेव’ में लिखते हैं-

शंकरदेवेउ एई निर्गुण कृष्णर गुणक प्रकाश करि गैछे। कीर्तन-घोषार प्रथम अध्याय स्वरूपे संग्रथित चतुर्विंशति अबतार बर्णनर प्रथम पदफाकियेई तार प्रकृष्ट उदाहरण। (शईकीया 2008:62)

अर्थात् शंकरदेव ने भी निर्गुण कृष्ण के गुणों को प्रकाशित कर गए है। 'कीर्तन-घोषा' के प्रथम अध्याय स्वरूप संगृहीत चतुर्विंशति अवतार वर्णन का प्रथम पद ही उसका स्पष्ट उदाहरण है।

डॉ. भूपेंद्र रायचौधरी ने शंकरदेव को विष्णु के नरावतार देवकी पुत्र कृष्ण के निर्गुण, निराकार रूप को किंकर कहा हैं (रायचौधरी 2002:93)। शंकरदेव ने नाम धर्म को ही युग धर्म माना। युगीन आडम्बर से मुक्ति तथा सर्वसाधारण को सही राह दिखाने के उद्देश्य से ही शंकरदेव ने निर्गुण ब्रह्म की सगुण उपासना का मार्ग बतलाया। कीर्तन-घोषा के अध्ययन से यह भी पता चलता है कि शंकरदेव ने श्रीकृष्ण रूपी निर्गुण ब्रह्म

की सगुणोपासना के साथ-साथ विष्णु के साथ शिव और ब्रह्मा की अभेद्यता का चित्रण भी किया है। इस प्रकार शंकरदेव के आराध्य कृष्ण रूपी ब्रह्म का स्वरूप अत्यंत व्यापक है। वे निर्गुण होकर भी सगुण हैं और सगुण होकर भी निर्गुण।

4.2.2.2. भक्ति पद्धतिः

शंकरदेव द्वारा रचित 'कीर्तन-घोषा' के रूप में भागवत-तत्व को संक्षेप और गेय रूप प्रदान करने के कारण असमीया वैष्णव भक्तों में इसका महत्त्व तुलसीदास कृत रामचरितमानस जैसा है। शंकरदेव ने कीर्तन-घोषा जो कथात्मक भक्तिकाव्य है, उसमें ब्रह्म पद प्राप्ति हेतु भक्ति को ही सबसे सुगम और सुखदायी घोषित किया है। कीर्तन-घोषा के प्रत्येक खण्ड में कृष्ण भक्ति को ही श्रेयस्कर बताया है। शंकरदेव के अनुसार भक्ति विरोधी सभी विषयों का परित्याग ही भक्ति का सच्चा साधन है। गुरु, देव, नाम और भक्त इन चारों का महत्त्व ही मूलतः एकशरण हरि नाम धर्म में सर्वोपरि माना जाता है। जहाँ तक कीर्तन-घोषा की भक्ति पद्धति की बात है शंकरदेव ने भागवत के अनुरूप नवधा भक्ति को ही स्वीकार किया है। कीर्तन-घोषा के 'प्रह्लाद-चरित्र' खण्ड का यह प्रस्तुत पद यहाँ उल्लेख्य है-

श्रवण कीर्तन   स्मरण बिष्णुर
अर्चन पद सेवन।
दास्य सखित्व   वंदन बिष्णुर
करिब देहा अर्पण।। (गोस्वामी 1989:81)

अर्थात् श्रवण, कीर्तन, स्मरण, अर्चन, पादसेवन, दास्य, सखित्व, वंदन और आत्मनिवेदन ही विष्णु भक्ति के साधन हैं।

कीर्तन-घोषा में श्रवण और कीर्तन को शंकरदेव ने श्रेष्ठतर माना है, क्योंकि वैयक्तिक और सामूहिक दोनों स्तरों पर इसका अत्यधिक रूप में प्रचलन सम्भव है। इस कारण आज भी असमीया समाज में नाम-

कीर्तन एवं प्रसंग के रूप में कीर्तन-घोषा का स्थान प्रमुख है। शंकरदेव ने कीर्तन-घोषा में कीर्तन के महत्त्व को अनेक स्थलों पर व्यक्त किया है-

भणिला शंकरे   शुना सर्ब नरे

नकरियो जन्म बृथा।

श्रवणते सुखे   मोक्ष-पद पाय

शुना हेन कृष्ण कथा।।

हरिर कीर्तन   करिया पापर

मुण्डत मारियो बाड़ि।

आन काम एड़ि   बोला हरि हरि

पलाउक पातक छाड़ि।। (गोस्वामी 1989:334)

अर्थात् शंकरदेव कहते हैं कि सभी नरों सुनो अपने जीवन को व्यर्थ न गँवाओ। कृष्ण कथा श्रवण कर मोक्ष प्राप्ति का सुख लो। हरि कीर्तन कर पाप के सिर पर प्रहार करो। अन्य काम छोड़कर सभी हरि नाम जपो ताकि पाप दूर भाग जाए।

श्रवण कीर्तन के साथ शंकरदेव ने नाम-महिमा और स्मरण भक्ति पर भी बल दिया है। ‘अजामिल उपाख्यान’ में चित्रित स्मरण भक्ति का एक पद यहाँ उल्लेख्य है-

हरिनाम धर्म   स्मरण महिमा

देखियो दूत सम्प्रति।

पापी अजामिलो   नारायण बुलि

पाइलेक परम गति।।   (गोस्वामी 1989:45)

अर्थात् हरिनाम धर्म स्मरण की महिमा को साक्षात् यम दूतों ने देखा। नारायण नाम लेने मात्र से ही पापी अजामिल को परम गति मिली।

इसी प्रकार 'कीर्तन-घोषा' में पादसेवन, अर्चन तथा वंदन भक्ति के निदर्शन भी देखने को मिलता है। इन तीनों का सम्बंध आराध्य के स्वरूप से होता है। शंकरदेव ने अपने आराध्य को स्वामी तथा स्वयं को सेवक मानकर उनकी सेवा की है। स्वामी के प्रति सेवक का लोक में जैसा व्यवहार होता है, वैसा ही भगवान के लिए भक्त का व्यवहार पादसेवन कहलाता है। कीर्तन-घोषा के 'बलिछलन' खण्ड में चित्रित राजा बलि द्वारा की गई पादसेवन का एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है-

माधवर पावत अर्पिले आपुनाक।
बलिसे जिनिला इटो दुर्जय मायाक।।
एहि बुलि पुष्प बरिषंत घने घने।
बोला हरि हरि सवे सभासदगण।। (गोस्वामी 1989:152)

अर्थात् राजा बलि माधव (कृष्ण रूपी ब्रह्म) के चरणों में आत्मसमर्पण कर दुर्जेय माया को वश में कर लेता है, जिससे फूलों की वर्षा होने लगी और सारे सभासद हरि ध्वनि देने लगे।

'कीर्तन-घोषा' के 'मुचुकंद स्तुति', 'विप्र पुत्र आनयन' आदि खण्डों में अर्चन भक्ति के दर्शन होते हैं। 'मुचुकंद स्तुति' खण्ड से एक उदाहरण यहाँ उल्लेख्य है-

पाछे मुचुकंदे कृष्णक जानिल
गर्गर बाक्य सुमरि।
परि तुति आति करिबे लागिल
चरणे प्रणाम करि।। (गोस्वामी 1989:331)

अर्थात् बाद में मुचुकंद कृष्ण के वास्तव स्वरूप को जानकर गर्ग के बात को याद करता है और कृष्ण के चरणों में गिरकर उनकी स्तुति अर्चना करने लगता है।

'कीर्तन-घोषा' में वंदन भक्ति का साधन भी प्रायः अधिकतर खण्डों में देखने को मिलता है। स्त्रोतादि से की गई भक्ति वंदन भक्ति कहलाता है। वंदन भक्ति का एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है-

हेन जगन्नाथ अनाथर इष्टदेव।
हरि बिने आवर तारंता नाहि केव।। (गोस्वामी 1989:120)

अर्थात् जगन्नाथ (कृष्ण) ही अनाथों के भगवान हैं। उनके बिना हमें उद्धार करनेवाला अन्यत्र कोई नहीं है।

'कीर्तन-घोषा' में शंकरदेव की दास्य भक्ति के उत्कृष्ट निदर्शन प्रायः प्रत्येक खण्ड में देखने को मिलता है। शंकरदेव ने कृष्ण रूपी निर्गुण ब्रह्म की भक्ति मुख्यतः दास के रूप में की है। एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है-

तोमार अद्वैत रूप परम आनंद पद
ताते मोर मग्न हौक चित्त।
भैलोहो दासरो दास जानि आवे नरहरि
आमाक नेड़िबा कदाचित।। (गोस्वामी 1989:412)

अर्थात् अद्वैत रूपी परामात्मा के चरणों में ही मेरा (शंकरदेव) मन लगा रहे, क्योंकि उसी में परम आनंद प्राप्त होता है। मैं तो परामात्मा के दासों का भी दास हूँ और कदाचित आप मुझे अपने से दूर न करें।

नवधा भक्ति के अंतर्गत सख्य भी आती है। शंकरदेव के 'कीर्तन-घोषा' में सख्य भक्ति का चित्रण कम ही हुआ है। पर एक या दो खण्डों में ही सख्य भक्ति के पद मिलते हैं। 'दामोदर विप्रेपाख्यान', 'शिशुलीला' और 'रास-क्रीड़ा' में सख्य भक्ति के कुछ पदों के दर्शन होते हैं, 'शिशुलीला' खण्ड का एक पद यहाँ उल्लेख्य हैः

किनु भाग्य किनु भाग्य ब्रजर प्रजार।

तुमि पूर्णब्रह्म हरि मित्र भैला जार।। (गोस्वामी 1989:185)

अर्थात् यह ब्रज की प्रजा का सौभाग्य ही है, जिसके कारण स्वयं पूर्ण ब्रह्म रूपी कृष्ण उनके मित्र बनकर रहे।

भक्ति की चरमावस्था का नाम ही आत्मनिवेदन है। 'कीर्तन-घोषा' में चित्रित आत्मनिवेदन की पराकाष्ठा देखने लायक है। उदाहरणस्वरूपः

जानिबाहा भैलो प्रभु तोमार किंकर।

तजु चरणत समर्पिलो कलेवर।।

समस्तरे बुद्धि साक्षी सबे तुमि जाना।

आजि धरि प्रभु मोक दास बुलि माना।। (गोस्वामी 1989:186)

अर्थात् शंकरदेव कहते हैं कि प्रभु यह जान लो कि तुम्हारा दास तुम्हारे चरणों में स्वयं को समर्पित करता हूँ। प्रभु तुम तो सर्वज्ञानी हो, आज से तुम मुझे अपने दास के रूप में मान ही लो।

इस प्रकार 'कीर्तन-घोषा' में नवधा भक्ति के सभी रूपों का चित्रण हुआ है। कृष्ण (पुर्ण ब्रह्म) को सर्व ऐश्वर्यशाली रूप मानकर एकनिष्ठ भाव से उनके चरणों में शंकरदेव ने आत्मसमर्पण कर 'कीर्तन-घोषा' में शांत भक्ति का चित्रण किया है। शंकरदेव ने 'कीर्तन-घोषा' में भिन्न रसों को आश्रय बनाकर अंत में शांत भक्ति का प्रतिपादन किया है। 'प्रह्लाद-चरित्र' खण्ड का एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत हैः

तुमि जगजीव तोमाक पुजिले

मिलै आपोनत याइ।

येन मुख श्रीक प्रतिबिम्ब मुखे

देखय दर्पण चाइ।।

हेन जानि मइ मति अनुसारे

भजिलो तोह्मार पाव।

ब्रह्मा आदि देव गणो डरे मरै

एरिओ क्रुद्ध स्वभाव।। (गोस्वामी 1989:105/106)

अर्थात् भक्त प्रह्लाद अपने प्रभु के नरसिंहवतार के सम्मुख कहते हैं कि हे प्रभु! तुम्हीं इस संसार के सृष्टिकर्ता हो। जिस प्रकार दर्पण में अपने ही प्रतिबिम्ब को हम देख सकते हैं, उसी प्रकार तुम्हें पूजने के कारण ही मैं तुम्हें इस रूप में भी पहचान गया हूँ। इस कारण मैं मन से तुम्हारे चरणों में स्वयं को समर्पित करता हूँ। हे प्रभु! तुम अपने क्रोध को त्याग दो, क्योंकि ब्रह्मा आदि सभी देवगण तुम्हारे क्रोधित रूप को देखकर भय से मर रहे हैं।

इस प्रकार शंकरदेव की कीर्तन-घोषा में नवधा भक्ति के साथ-साथ शांत भक्ति का भी चित्रण हुआ है।

4.3 तुलनात्मक विश्लेषणः

प्रस्तुत अध्याय में 'पदावली' और 'कीर्तन-घोषा' में चित्रित भक्ति भावना के अध्ययन विवेचन के पश्चात दोनों कृतियों में कुछ साम्य और वैषम्य परिलक्षित होते हैं, जिसे निम्नलिखित रूप में देखा जा सकता है-

4.3.1 साम्यः

जनकवि विद्यापति और मानवता के पुजारी शंकरदेव कृत क्रमशः पदावली और कीर्तन-घोषा दोनों ही कृतियों में भक्ति भावना का चित्रण मिलता है। दोनों ही कृतियों में रचनाकारों ने अपने-अपने इष्ट के प्रति नवधा भक्ति के अंतर्गत भक्ति प्रदर्शित की है। नवधा भक्ति के लगभग प्रायः रूप ही दोनों कृतियों में

विद्यमान हैं। दोनों ही कृतियों का जनमानस में श्रवण और कीर्तन किया जाता है। अर्चन, वंदन, पादसेवन, स्मरण सभी के भक्ति विषयक पद प्रस्तुत कृतियों में चित्रण हुआ है। दास्य भक्ति के अनुपम निदर्शन दोनों ही कृतियों में पाया जाता है। आत्मनिवेदन नवधा भक्ति का चरम पर्याय होता है, उसका भी चित्रण पदावली और कीर्तन-घोषा में हुआ है। विद्यापति ने पदावली में अपने इष्टों के अवतारी रूपों का वंदन किया है। शंकरदेव ने भी कीर्तन-घोषा में कृष्ण के अवतारी रूप का वर्णन किया है। एक और साम्य पदावली और कीर्तन-घोषा में अध्ययन के दौरान मिलता है। वह है-विद्यापति ने भी विष्णु और शिव के एकात्मक स्वरूप का वर्णन कर स्तुति की है और शंकरदेव ने भी विष्णु के साथ शिव की अभेदता का चित्रण किया है।

4.3.2 वैषम्यः

पदावली और कीर्तन-घोषा में चित्रित भक्ति भावना का अध्ययन विवेचन करने से कई साम्य तो परिलक्षित होते हैं, साथ ही कुछ वैषम्य भी दोनों कृतियों में विद्यमान हैं। सर्वप्रथम आराध्य के स्वरूप की तुलना की जाए तो पदावली में महाकवि विद्यापति ने बहुदेवोपासना की है। कृष्ण, राधा, शिव, आदिशक्ति दुर्गा, भैरवी, गंगा आदि की स्तुति-वंदना-प्रार्थना विद्यापति ने की है। अर्थात् विद्यापति एकेश्वरवादी भक्त कदापि नहीं हैं, जबकि कीर्तन-घोषाकार शंकरदेव ने केवल कृष्ण रूपी पूर्ण ब्रह्म की उपासना की है। अन्य किसी देवी-देवता की आराधना शंकरदेव ने नहीं की। शंकरदेव पूर्णतः एकेश्वरवादी थे। स्पष्टतः विद्यापति के इष्ट द्वैत हैं, जबकि शंकरदेव अद्वैत ब्रह्म के उपासक थे। इसके उपरांत विद्यापति की भक्ति पद्धति सगुणोपासना है, जबकि शंकरदेव की भक्ति पद्धति सगुण होकर भी निर्गुण है। दोनों ही कृतियों में नवधा भक्ति के प्रायः सभी रूपों का चित्रण मिलता तो है, पर पदावली में सख्य भक्ति का चित्रण नहीं मिलता। एक और बात यहाँ उल्लेख्य है कि विद्यापति की पदावली में माधुर्य भक्ति का चित्रण मिलता है, किंतु शंकरदेव के 'कीर्तन-घोषा' में माधुर्य भक्ति का चित्रण नहीं मिलता। संख्या की दृष्टि से यदि तुलना की जाए तो पदावली में 'कीर्तन-घोषा' की तुलना में भक्ति विषयक पद भी कम हैं।

4.4 निष्कर्षः

प्रस्तुत अध्याय में अध्ययन विवेचन के उपरांत हमने पाया कि-महामहोपाध्याय कवि शिरोमणि विद्यापति ने तत्कालीन राजदरबारी वातावरण में रहने के बावजूद अपनी अमर कृति 'पदावली' में भक्ति विषयक पद लिखकर भक्ति भावना का चित्रण किया है। पदावली में कृष्ण वंदना, राधा वंदना, शिव स्तुति, शक्ति तथा भैरवी की स्तुति-वंदना, गंगा स्तुति, जानकी वंदना कर इन सभी के प्रति विद्यापति ने भक्ति प्रदर्शित की है। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि विद्यापति ने बहुदेवोपासना की है। पदावली में अपने आराध्यों की भक्ति पद्धति में कवि ने नवधा भक्ति पद्धति को अपनाया है। केवल सख्य भक्ति के अलावा नवधा भक्ति के सभी रूपों का चित्रण पदावली में मिलता है। अर्चन, वंदन, पादसेवन, दास्य, आत्मनिवेदन आदि का चित्रण पदावली में निश्चित रूप में हुआ हैं। विद्यापति के जीवन के अंतकाल में लिखे गए कृष्ण कीर्तन आदि में दास्य भक्ति के उत्कृष्ट निदर्शन मिलते हैं। नवधा भक्ति के साथ ही अपरूप के कवि विद्यापति ने पदावली में माधुर्य भक्ति का भी सुंदर चित्रण किया है। जहाँ तक विद्यापति की उपासना पद्धति की बात आती है, कवि विद्यापति ने अपने आराध्यों की सगुणोपासना ही की है।

इसी प्रकार हमारे अध्ययन की दूसरी कृति 'कीर्तन-घोषा' में भी जिसके रचयिता असम के संत महापुरुष शंकरदेव हैं, भक्ति भावना का चित्रण हुआ है। मूलतः 'कीर्तन-घोषा' तो भक्ति प्रधान काव्य ही है। तत्कालीन पतनोन्मुख असम के सुधार हेतु शंकरदेव ने जो एकशरण हरि नाम धर्म का प्रचार-प्रसार किया था, उसमें 'कीर्तन-घोषा' का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। भागवत पुराण के वेदांत सिद्धांत पर शंकरदेव का एकशरण हरि नाम धर्म आधारित है। 'कीर्तन-घोषा' में शंकरदेव ने एकनिष्ठ भाव से कृष्ण रूपी सनातन ब्रह्म की उपासना को ही मोक्ष का परम उपाय बताया है। शंकरदेव के आराध्य कृष्ण रूपी ब्रह्म का स्वरूप अत्यंत व्यापक है। उनका कृष्ण दैवीय और मानवीय गुणों के अपूर्व समन्वित रूप हैं। शंकरदेव ने भी अपने आराध्य कृष्ण रूपी ब्रह्म की भक्ति नवधा भक्ति द्वारा प्रदर्शित की है। कीर्तन-घोषाकार शंकरदेव ने श्रवण और कीर्तन

को श्रेष्ठ स्थान देने के साथ-साथ नाम महिमा पर भी बल दिया है। नाम धर्म को युग धर्म बतानेवाले शंकरदेव ने कृष्ण भक्ति को ही श्रेयस्कर कहा है। 'कीर्तन-घोषा' के प्रायः सभी खण्डों में ही अर्चन, स्मरण, वंदन, पादसेवन, दास्य, सखित्व और आत्मनिवेदन इन सभी भक्ति रूपों का चित्रण हुआ है। जहाँ तक शंकरदेव की उपासना पद्धति की बात है उन्होंने प्रकृतार्थ में निर्गुण ब्रह्म की सगुण उपासना की है।

इस प्रकार हम निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि महाकवि विद्यापति और महापुरुष शंकरदेव दोनों ही अलग-अलग प्रांत के, अलग-अलग व्यक्तित्व और अलग-अलग परिवेश के होने पर भी दोनों की ही उत्कृष्ट कृतियों क्रमशः 'पदावली' और 'कीर्तन-घोषा' में भक्ति भावना का चित्रण हुआ है। हाँ, अध्ययन के दौरान आलोच्य कृतियों में भक्ति विषयक समताओं के साथ-साथ वैषम्य भी मिलते हैं।

संदर्भ-ग्रंथसूची

असमीया

गोस्वामी, यतींद्रनाथ. *कीर्तन-घोषा आरु नाम-घोषा.* प्रथम. गुवाहाटीः ज्योति प्रकाशन. 1989.

नेओग, महेश्वर. *असमीया साहित्यर रूपरेखा.* प्रथम. गुवाहाटीः चंद्र प्रकाशन. 1962.

बेजबरुवा, लक्ष्मीनाथ. *बेजबरुवा ग्रंथावली.* प्रथम खण्ड. गुवाहाटीः साहित्य प्रकाश, ट्रिबिउन बिल्डिंछ. 1968.

बायन, भवजित. *सर्वभारतीय भक्ति आंदोलन आरु शंकरदेवर कीर्तन-घोषा.* प्रथम. गुवाहाटीः पाहि प्रकाशन. 2014.

भट्टाचार्य, ज्योत्सना. *समसामयिक भारतीय दर्शन.* प्रथम. गुवाहाटीः निलगिरि मेनछन. 1997.

शइकीया, नगेन. *विषय शंकरदेव.* प्रथम. धेमाजीः किरण प्रकाशन. 2008.

हिन्दी

उपाध्याय, पण्डित कन्हैयालाल(अनुवादक). *श्रीमद्भागवत.* मुरादाबादः भागवत प्रकाशं कार्यालय. 1901.

दीक्षित, आनंदप्रकाश. *विद्यापति पदावली.* साहित्य प्रकाशन मंदिर. ग्वालियर.

नगेंद्र. *हिन्दी साहित्य का इतिहास.* प्रथम. नई दिल्लीः मयूर पैपरबक्स. 1975.

बेनीपुरी, रामवृक्ष. *विद्यापति पदावली.* पंचम. इलाहाबादः लोकभारती प्रकाशन. 2011.

मिश्र, भगीरथ. *काव्यशास्त्र.* विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी. पंचविंशति संस्करण. 2014.

रायचौधरी, भूपेंद्र. *श्रीमंत शंकरदेवः व्यक्तित्व एवं कृतित्व.* प्रथम. गुवाहाटीः श्रीमंत शंकरदेव संघ. 2002.

शुक्ल, आचार्य रामचंद्र. *चिंतामणि पहला भाग*. नई दिल्लीः अशोक प्रकाशन. 2004.

शर्मा, मंदाकिनी(संपा). *पूर्वोत्तर का भक्ति साहित्य*. प्रथम. अखिल भारतीय साहित्य परिषद न्यास. नई दिल्ली. 2019.

सिंह, शिवप्रसाद. *विद्यापति*. इलाहाबाद. तेइसवाँ संस्करण. लोकभारती प्रकाशन. 2017.

वैबसाइट

आलेख, *गीता में सगुण और निर्गुण भक्ति*, 3August 2018 https://m.dailyhunt.in>nepal>hindi